भारत का सर्वोच्च न्यायालय

सिविल अपीलीय अधिकारिता

<u>सिविल अपील संख्या 3086/2016</u>

राजस्थान राज्य और अन्य	अपीलकर्ता
बनाम	
मुकेश शर्मा	प्रतिवादी

के साथ

<u>सिविल अपील संख्या 3092/2016</u>

राजस्थान राज्य और अन्य	अपीलकर्ता
बनाम	
गुरबख्श सिंह उर्फ़ बक्षी सिंह	प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3087/2016</u>

राजस्थान राज्य और अन्य	अपीलकर्ता
बनाम	
बीरबल राम	प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3088/2016</u>

राजस्थान राज्य और अन्य | अपीलकर्ता

बनाम

रतन लाल | प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3089/2016</u>

राजस्थान राज्य और अन्य | अपीलकर्ता

बनाम

राम गोपाल | प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3091/2016</u>

राजस्थान राज्य और एक अन्य | अपीलकर्ता

बनाम

बीरबल महारिया | प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3090/2016</u>

राजस्थान राज्य और अन्य | अपीलकर्ता

बनाम

तेज सिंह उर्फ़ संवत सिंह | प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3093/2016</u>

राजस्थान राज्य और एक अन्य — अपीलकर्ता

बनाम

राम अवतार खटिक और अन्य — प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3094/2016</u>

राजस्थान राज्य और एक अन्य — अपीलकर्ता

बनाम

राम रतन और अन्य — प्रतिवादी

<u>सिविल अपील संख्या 3095/2016</u>

राजस्थान राज्य — अपीलकर्ता

बनाम

अर्जुन — प्रतिवादी

<u>निर्णय</u>

<u>न्यायाधीश, नवीन सिन्हा</u>

अपीलों के इस बैच में विचार के लिए कानून का एक सामान्य सवाल उठता है इसलिए व्यक्तिगत तथ्य निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं

हैं। यह देखना पर्याप्त है कि अलग-अलग असम्बद्ध घटनाओं से उत्पन्न विभिन्न सत्र परीक्षणों में संबंधित अपीलों में प्रत्येक प्रतिवादी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और अन्य प्रावधानों के तहत दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। उन्होंने यह कहते हुए व्यक्तिगत रिट याचिकाएं दायर कीं कि उन्होंने 14 साल से अधिक समय तक हिरासत में सेवा की है, लेकिन जेल अधिकारियों द्वारा उनकी सजा को कम करने और समय से पहले रिहाई के लिए राज्य सलाहकार बोर्डों के समक्ष उनके मामले नहीं रखे गए।राजस्थान कारागार (सजा कम करना) नियमावली, 2006 के नियम 8(2)(i) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसमें उनके मामलों पर विचार करने पर तब तक के लिए रोक लगा दी गई थी, जब तक कि उन्होंने माफी को छोड़कर वास्तविक कारावास के 14 साल पूरे करने के बाद कम से कम चार साल की माफी अर्जित नहीं कर ली थी, क्योंकि यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433-ए के विपरीत था। किसी अन्य मुद्दे का आग्रह नहीं किया गया था।

2. जेल अधिनियम, 1894 की धारा 59 (1) कीधारा(2) और (5) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा नियम, 2006 बनाए गए थे (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित)। उच्च न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 59 (2) के अनुसार राज्य

के विधानमंडल के समक्ष नियम नहीं रखे जाने से वैधानिक बल प्राप्त नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त, ***मारू राम बनाम भारत संघ***, 1981 (1) एस. सी. सी. 107 वाले मामले में संविधान पीठ के विनिश्चय पर भरोसा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा433-क के विपरीत नियम नहीं बनाए जा सकते थे।

3. विहित विधि के इस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, विचार के लिए उत्पन्न होने वाले वैधानिक प्रावधानों को निर्धारित करना उचित होगा-

"धारा59. नियम बनाने की शक्ति-

(1) राज्य सरकार सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के अनुरूप नियम बना सकेगी-

X X X

(2) कारागार अपराधों के वर्गीकरण को गंभीर और छोटे अपराधों के रूप में निर्धारित करना;

(5) आचरण अंक देने और सजा को कम करने के लिए;

X X X

(2) इस खंड के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाएगा।

"नियम 8 (2) उपनियम (i) में किसी बात के होते हुए भी

(i) एक कैदी जिसे किसी भी अपराध के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, जिसके लिए मौत की सजा कानून द्वारा दी गई सजा में से एक है या जिसे मौत की सजा दी गई है, किंतु दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा433 के अधीन इस दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया गया है, उस पर केवल तब विचार किया जाएगा जब उसने माफी को छोड़कर किंतु जांच, अन्वेषण या विचारण के दौरान बिताई गई निरोध की अवधि सहित, वास्तविक कारावास की 14 वर्ष की अवधि पूरी कर ली है, इस शर्त पर कि ऐसे कैदी को भी विचारार्थ पात्र होने के लिए कम से कम 4 वर्ष की माफी प्राप्त करनी होगी।

धारा433- क. कुछ मामलों में माफी और लघुकरण की शक्तियों पर प्रतिबंध-

धारा432 में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि पर आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित किया जाता है, जिसके लिए मृत्यु विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है, या जहां किसी व्यक्ति पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश को धारा433 के अधीन आजीवन कारावास में लघुकृत किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति को तब तक कारावास से

नहीं छोड़ा जाएगा जब तक उसने कम से कम चौदह वर्ष का कारावास नहीं भुगत लिया हो।

4. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. मनीष सिंघवी ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने नियम 8 (2) (i) के बाद वाले हिस्से को खारिज कर दिया, जिसमें दोनों मामलों में हिरासत में 14 साल पूरा करने के बाद न्यूनतम चार साल की छूट की आवश्यकता है।विधायिका के समक्ष नहीं रखने के लिए नियम को निरस्त करने की घोषणा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया कि नियमों में पूर्व शर्त के रूप में प्रख्यापन से पहले विधायिका के समक्ष रखने पर विचार नहीं किया गया था। "जैसे ही "शब्दों का उपयोग राज्य विधानमंडल के समक्ष रखे जाने के लिए कोई निश्चित समय अवधि नहीं देता है। विधायिका के समक्ष नियमों को न रखने के लिए कोई परिणाम प्रदान नहीं किया गया था, और जिसके अभाव में यह लागू नहीं हो सका। इसलिए यह प्रावधान निर्देशक था और न कि अनिवार्य। अतः विधायिका के समक्ष नियमों को रखने में कोई चूक नियमों को अविधिमान्य नहीं बनाती है। किसी भी स्थिति में ये नियम बाद में विधायिका के समक्ष रखे गए थे। डॉ. सिंघवी ने ***मैसर्स एटलस साइकिल इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य बनाम हरियाणा राज्य,*** (1979) 2 एस. सी.196पर भरोसा किया।

5. आगे यह प्रस्तुत किया गया कि 14 वर्ष की अभिरक्षा पूरी होने के पश्चात् माफी अधिकार का विषय नहीं था, बल्कि यह कई बातों पर निर्भर थी। ***मारु राम***(उपरोक्त) की ठीक से सराहना नहीं की गई है। आजीवन कारावास का अर्थ आमतौर पर उम्र कैद होता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा433-ए में यह उपबंध है कि जहां ऐसे अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया जाता है जिसके लिए मृत्युदंड एक दंड है, वहां ऐसे व्यक्ति को कारावास से तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक उसने कम से कम चौदह वर्ष का कारावास नहीं भोगा हो। इस प्रकार, राज्य अपने विवेक से आसानी से यह प्रावधान कर सकता है कि आजीवन कारावास किसी छूट के अधीन नहीं होगा या उस पर सीमाओं का प्रावधान नहीं किया जाएगा। वर्तमान मामले में छूट, राज्य के अधिकार क्षेत्र में आने वाले वैधानिक नियमों में शामिल राज्य की नीति का मामला होने के कारण, मौलिक अधिकार के मामले के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है। ***मोहम्मद मुन्ना बनाम भारत संघ और अन्य***, (2005) 7 एससीसी 417 पर भरोसा किया गया था। अतः राज्य सरकार आजीवन कारावास का दंड भुगत रहे किसी दोषी की समयपूर्व रिहाई से पूर्व न्यूनतम वर्षों के लिए आग्रह कर सकती है।

6. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार की छूट नीति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के विपरीत थी क्योंकि

एक मॉडल कैदी को 4 साल की छूट प्राप्त करने के लिए लगभग 18 साल की कैद की आवश्यकता होगी, जिससे धारा433-ए के संदर्भ में सजा को कम करने के लिए विचार करना लगभग असंभव हो जाता है। नियम 8 (2) (i)***मारू राम***(पूर्वोक्त) को ध्यान में रखते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा433-क के स्पष्ट रूप से विपरीत था कि यह 14 वर्षों के बाद माफी के लिए विचार को प्रतिबंधित करता है।

7. हमने संबंधित प्रस्तुतियों पर विचार किया है। धारा59 (2) की सादी भाषा यह प्रकट करती है कि प्रख्यापन से पूर्व विधान मंडल के समक्ष नियमों को रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। रखने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है। जैसा कि उचित रूप से आग्रह किया गया है, 'जैसे ही हो'शब्दों का उपयोग और न रखने के लिए किसी परिणाम की अनुपस्थिति में प्रावधान निर्देशिका को अनिवार्य नहीं बनाती है। ***एटलस साइकिल***(उपरोक्त) में यह देखा गया थाः

> "22....वर्तमान मामले में, यह देखा जा सकता है कि अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (6) में केवल यह प्रावधान किया गया है कि केंद्र सरकार या केंद्र सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकरण द्वारा धारा 3 के तहत किया गया प्रत्येक आदेश, इसे किए जाने के बाद जल्द से जल्द संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा। इसमें यह

प्रावधान नहीं है कि यह संसद के किसी भी सदन द्वारा नकारात्मक या सकारात्मक प्रस्ताव के अधीन होगा। इसमें यह भी प्रावधान नहीं है कि संसद अधिनियम की धारा 3 के तहत किए गए आदेश को अनुमोदित या अस्वीकृत करने के लिए स्वतंत्र होगी। इसमें यह भी नहीं कहा गया है कि यह किसी संशोधन के अधीन होगा जिसे संसद का कोई भी सदन अपने विवेक से आवश्यक समझे। इसमें यह भी निर्दिष्ट नहीं किया गया है कि आदेश किस अवधि के लिए संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना है और न ही इसमें आदेश को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखने के बारे में निर्देशों का पालन न करने या अनुपालन न करने के लिए कोई दंड का प्रावधान है। यह भी ध्यान दिया जाएगा कि संसद के दोनों सदनों के समक्ष आदेश रखने की आवश्यकता पूर्व शर्त नहीं है बल्कि आदेश देने के बाद की है। दूसरे शब्दों में, संसद के दोनों सदनों के अनुमोदन के बिना आदेश देने पर कोई रोक नहीं है। इन परिस्थितियों में, हमारा स्पष्ट विचार है कि अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (6) में निहित आवश्यकता पहली श्रेणी के भीतर आती है यानी "साधारण रखना"और निर्देशिका अनिवार्य नहीं है।

अंत में, यह माना गया कि विधायिका का इरादा कभी नहीं था कि अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (6) द्वारा परिकल्पित की गई आवश्यकता के अनुपालन के आदेश को रद्द कर दिया जाए।

8. राजस्थान कारागार नियमावली, 1951 के भाग-3 में छूट प्रणाली शीर्षक के अंतर्गत नियम 1(ई) में प्रावधान है कि आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा का अर्थ 20 वर्ष का कारावास माना जाएगा।

9. नियम 2006 के नियम 2 (ई) में सजा को कम करने का अर्थ कैदी की सजा की उस अवधि को कम करना है जो उसे न्यायिक रूप से घोषित सजा पर राज्य की ओर से अनुग्रह के रूप में और जेल में उसके अच्छे व्यवहार की मान्यता के रूप में जेल में सेवा करनी है।

10. दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आजीवन कारावास या जीवन पर्यंत के लिए सजा का मतलब होगा कि दोषी के प्राकृतिक जीवन को ***गोपाल विनायक गोडसे बनाममहाराष्ट्र राज्य*** (1961) 3 एससीआर 440के मद्देनजर और विस्तार की आवश्यकता नहीं है। ***मारू राम***(सुप्रा) के पैरा 72 (4) में निम्नानुसार है:

> “5......आजीवन निर्वासन या आजीवन कारावास की सजा को प्रथम दृष्टया दोषी व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की पूरी शेष अवधि के लिए निर्वासन या कारावास माना जाना चाहिए।"

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 दंडादेश को निलंबित करने या हटाने और उसे अस्वीकार करने की शक्ति प्रदान करता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 (ख) आजीवन कारावास के दंड को 14 वर्ष में लघुकृत करने का उपबंध करती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433-ए में यह उपबंध किया गया है कि माफी या लघुकरण कारावास से दोषी की रिहाई को तब तक सक्षम नहीं बनाएगा जब तक कि व्यक्ति ने कम से कम 14 वर्ष कारावास की सजा काटी हो। इसलिए, यह एक न्यूनतम अवधि निर्धारित करता है जिसके पहले माफी पर विचार नहीं किया जा सकता है। कोई भी नियम, जो 14 साल से पहले माफी पर विचार करने का प्रावधान कर सकता है, स्पष्ट रूप से संहिता में निहित वैधानिक प्रावधान को देखते हुए ख़राब होगा। ***भारत संघ बनाम वी. श्रीहरन***, (2016) 7 एस. सी. सी. 1 में यह मत व्यक्त किया गया थाः

> "79. इस संदर्भ में, सीआरपीसी की धारा 433-ए की व्याख्या पर विद्वान सॉलिसिटर जनरल की प्रस्तुति महत्वपूर्ण है। उनका तर्क था कि सीआरपीसी की धारा 433-ए के तहत जो निर्धारित किया गया है वह केवल न्यूनतम है और इसलिए, 14 साल से अधिक की किसी भी अवधि में और अपने जीवन के अंत तक इसे तय करने के लिए कोई प्रतिबंध नहीं है। हमें उक्त तर्क में सार मिलता है। जब हम धारा 433-क

> के प्रति निर्देश करते हैं, तो हम पाते हैं कि उक्त खंड में प्रयुक्त अभिव्यक्ति, दोषी ठहराए गए और आजीवन कारावास से गुजरने के लिए निदेशित किए गए किसी व्यक्ति से संबंधित माफी की मंजूरी के प्रयोजन के लिए, यह अनुबंधित करती है कि ऐसे व्यक्ति को कारावास से तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने कम से कम चौदह वर्ष का कारावास न काट लिया हो (ज़ोर दिया गया)।

इसलिए, जब क़ानून के तहत न्यूनतम कारावास निर्धारित किया जाता है, तोअदालत के लिए हर औचित्य होगा जो उस अपराध की प्रकृति पर विचार करता है जिसके लिए अपराधी को सजा दी जाती है जिसके लिए अपराध की सजा या तो मृत्यु या आजीवन कारावास की सजा दी जाती है, यह माना जाना चाहिए कि जनता और समाज के हित में यह सुनिश्चित करने के लिए अदालत के पास हर औचित्य और अधिकार होगा कि ऐसे व्यक्ति को बिना किसी छूट के 14 साल से भी अधिक समय के लिए कारावास की सजा भुगतनी चाहिए।वास्तव में, उक्त धारा 433-ए के शीर्षक के अनुसार, यह कुछ मामलों में छूट या रूपांतरण की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाता है।

12. स्पष्ट रूप से माफी अधिकार का मामला नहीं है, 14 साल की हिरासत पूरी होने पर ही नहीं, बल्कि इस संबंध में बनाए गए नियमों के अधीन है, जिसमें राज्य की नीति के रूप में विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में इसे पूरी तरह से अस्वीकार करना शामिल है, राज्य को नियम 8 (2) (i) द्वारा किए गए तरीके से माफी के दावों पर विचार करने के लिए प्रतिबंध लगाने से कुछ भी नहीं रोकता है। ***मारू राम***(पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

> "30. आजीवन कारावास की तुलना 20 वर्ष के कारावास से करने पर इस चर्चा में एक संभावित भ्रम पैदा हो जाता है।इस उद्देश्य के लिए आईपीसी की धारा 55 और विभिन्न माफी योजनाओं में परिभाषाओं पर भरोसा किया गया है।जैसा कि ***गोडसे*** में स्पष्ट रूप से बताया गया है, हमें केवल इतना कहने की आवश्यकता है कि ये समतुल्य अभिकलन के सीमित उद्देश्य के लिए हैं ताकि राज्य को कुल माफी की अपनी व्यापक शक्तियों का उपयोग करने में मदद मिल सके। यदि उपार्जित छूट कुल मिलाकर 20 वर्ष तक की है, फिर भी राज्य सरकार कैदी को रिहा कर सकती है या नहीं कर सकती है और जब तक आजीवन कारावास के शेष भाग को माफ करने का ऐसा आदेश

पारित नहीं किया जाता है, कैदी अपनी स्वतंत्रता का दावा नहीं कर सकता है। कारण यह है कि उम्रकैद आजीवन कारावास से कम नहीं है। इसके अलावा, जुर्माना तब और अब समान है- आजीवन कारावास। और जब सजा आजीवन कारावास हो तो माफी देने का कोई अधिकार नहीं है। धारा 433-ए द्वारा मूल रूप से अपराध से जुड़े कानून की तुलना में कोई बड़ी सजा नहीं दी जाती है। न ही 14 साल की जेल की अनिवार्य सजा से छूट का कोई निहित अधिकार रद्द हो जाता है, जब हमें इस बात का एहसास हो जाता है कि उम्रकैद की सजा पूरे जीवन की सजा है।

13. अतः यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उच्च न्यायालय ने दोनों मामलों में नियम, 2006 के नियम 8 (2) (i) को रद्द करके गलती की।नियम को वैध और कानून के अनुरूप माना जाता है। उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया जाता है और अपीलों की अनुमति दी जाती है।

न्यायाधीश(अरुण मिश्रा)

न्यायाधीश(नवीन सिन्हा)

नई दिल्ली, 22 अप्रैल, 2019

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**'के जरिए अनुवादक की सहायता से किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।